International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 16-06-2019; Accepted: 19-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 24-26

वैदिक साहित्य और पारिस्थितिकी विमर्श

ध्रुव कुमार
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
वैदिक साहित्य आदिकाल से ही मानव जाति को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा और प्रेरणा देता रहा है. वेदों में अनेकानेक ऋषियों मुनियों की सहस्राधिक वर्षों की तपश्चर्या और साधना का प्रतिफल विद्यमान है जो आज २१वीं सदी में भी हमारे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है. आज वेद का नाम आने पर हमारे मानस में एक ऐसे साहित्य की छवि निर्मित हो जाती है जो धार्मिक, कर्मकांडी अथवा देवताओं को समर्पित है. जबकि वास्तविकता यह नहीं है. यह वेदों का एक अंश मात्र है. वेदों में इसके कई गुना मात्रा में पर्यावरण, गणित, भूगोल, विज्ञान, रसायन तथा भौतिकी विद्यमान है. वर्तमान समय में हमने वेदों के असली स्वरुप को भुला दिया है और हम कृत्रिम विकास को प्रगति की परिभाषा दे बैठे हैं. यह कृत्रिम विकास न केवल मानव समाज बल्कि सम्पूर्ण पृथ्वी और उस पर रहने वाले सभी जीव जंतुओं के लिए विनाशकारी है. अब हम इसका तीव्र गति से अनुभव भी करने लगे हैं. ऐसी स्थिति में हमें पुन: उन्हीं वेदों की ओर वापस लौटकर अपने जीवन, समाज तथा राष्ट्र को सुखी, शांत तथा समृद्ध बनाने प्रयास करना चाहिए.

मूल शब्द: वेद, धर्म, साहित्य, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, विज्ञान, विमर्श, औद्योगीकरण ।

प्रस्तावना
मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के समस्त जीव जंतुओं का समग्र परिवेश पारिस्थितिकी से ही विकसित तथा प्रभावित होता रहा है. इतिहास हमें बताता है कि प्रत्येक मानवीय सभ्यता प्रकृति की गोद में ही जन्मी, फली-फूली है और अंततः उसी में समा गई है. सिंधु घाटी की सभ्यता हो अथवा मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता, सभी नदियों से प्रारंभ होकर नदियों में विलीन हुईं. इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि सृष्टि के समस्त प्राणियों एवं उनके क्रियाकलापों का नियामक प्रकृति ही रही है. पारिस्थितिकी तथा समाजशास्त्र, मानवशास्त्र का अध्ययन करने पर एक निष्कर्ष सामने आता है कि मानव के पारस्परिक, पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों का आधार पर्यावरण ही है अर्थात इन संबंधों को निर्धारित करने में पर्यावरण की केंद्रीय भूमिका होती है. जैव-विविधता, मानव की उत्पत्ति, सभ्यता की निर्मिति, धर्म, जाति, साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति, युद्ध और शांति आदि प्रत्येक क्रिया कलापों का कारण प्रकृति ही रही है.

वर्तमान युग विज्ञान एवं सूचना प्रौद्योगिकी का युग है. इसके जरिये मनुष्य असंभव को भी संभव बनाने का दंभ भर रहा है. नई-नई तकनीकों से जहां एक ओर वह सृजन की अपार क्षमता का स्वामित्व ग्रहण कर रहा है, वहीं तरह-तरह के विनाशकारी अस्त्रों-शस्त्रों के निर्माण से उसने समूची मानव जाति को विनाश के मुहाने पर लाकर खड़ा कर दिया है. पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है. विकास के रोज नए-नए बनते लक्ष्यों तक पहुँचने की जद ने मनुष्य और प्रकृति को भी आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया है. जिसकी उपलब्धियों पर वह अब तक इतराता रहा है, वही प्रकृति मानों अब मनुष्य से अपना हिसाब माँग रही हो.

वैदिक साहित्य की व्यापकता
वैदिक साहित्य का दायरा बहुत व्यापक है. अत: समाज और जीवन की कोई भी विडंबना उसके दायरे के बाहर नहीं है. प्रत्येक प्रकार की समस्याओं और विद्रूपताओं पर अपनी दृष्टि पहुँचाना साहित्य का मूल लक्षण रहा है और उसका मूल कर्तव्य भी. नतीजतन साहित्य से इतर माने जाने वाले विषय भी उसका केंद्र अंग हैं. इसके लिए ऋषियों मनीषियों को अपना ज्ञान भी व्यापक करना पड़ा और अनुभव परिधि भी. वैदिक साहित्य में हमें इस प्रकार के ज्ञान-विज्ञान के विषयों का अथाह और समृद्ध भण्डार प्राप्त होता है.

आधुनिक युग में औद्योगीकरण और लगातार बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के फलस्वरुप मनुष्य प्रकृति के दोहन की तरफ उद्यत हुआ. बढ़ते शहरीकरण, विकास के बदलते पैमाने और आधुनिक विज्ञान की नई-नई खोजों के कारण प्रकृति बड़े पैमाने पर दुष्प्रभावित हुई है. प्रकृति और मनुष्य की इच्छाओं के बीच संतुलन आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है. महात्मा गांधी का कहना था कि भोग की बढ़ती प्रवृत्ति ही प्रकृति का दोहन करवाती है. इसलिए हमें इससे बचना चाहिए और जल, जमीन और भोजन जैसी अनिवार्य सुविधाओं के लिए हमें प्रकृति का दोहन नहीं बल्कि उसका उपयोग करना चाहिए. ऐसा करने पर ही यह धरती युगों-युगों तक हमारी आवश्यकताओं को पूरा करती हुई जीवन के विविध रूपों के साथ मुस्कुराती रहेगी. धरती प्रत्येक मनुष्य की ज़रूरतों को पूरा कर सकती है पर मनुष्य के लालच को पूरा करने के लिए ऐसी हजार धरती भी कम पड़ेगी. ऐसे में हमारे वैदिक साहित्य हमें मार्ग दिखाते हैं. अथर्ववेद में कहा गया है कि 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या:। [1] अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं. यजुर्वेद में भी कहा गया है- नमो मात्रे पृथिव्ये, नमो मात्रे पृथिव्या:।[2] अर्थात माता पृथ्वी (मातृभूमि) को नमस्कार है, मातृभूमि को नमस्कार है। वृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को समझाते हैं , "इयं पृथ्वी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु - यह पृथ्वी सभी भूतों (मूल तत्वों) का मधु है और सब भूत इस पृथ्वी के मधु।" इसी प्रकार "यह अग्नि समस्त भूतों का मधु है और समस्त भूत इस अग्नि के मधु हैं।" "यह वायु समस्त भूतों का मधु है और समस्त भूत वायु के मधु हैं।" [3]

वैदिक साहित्य और पर्यावरणीय चिंता

आज पूरे विश्व के पर्यावरणविद् पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण को लेकर बेहद चिंतित हैं. चिंता स्वाभाविक है. निरंतर असंतुलित होते जा रहे पर्यावरण के परिणाम प्रत्यक्ष रूप से घटित होने लगे हैं. ऐसे में तरह तरह के उपाय विश्व की बौद्धिक बिरादरी के द्वारा किए जा रहे हैं. भौतिकता के अतिरेक ने मानव को अंतर्मुखी बने रहने पर विवश कर दिया है. प्राकृतिक परिवेश से दूर हो कर वह भौतिकता को ही समग्र मान कर बैठा है. के. वनजा के अनुसार, "आधुनिकता औद्योगिक संस्कृति का सौंदर्यशास्त्र है. वह प्रकृति से मनुष्य का अलगाव है. आधुनिकता में विश्व की सहज अन्विति को मिथ्या कहने का अहंकार है.... आधुनिकता ने साहित्य से जिंदगी की समग्रता को अलग कर दिया. जिंदगी और प्रकृति से साहित्य को अलग करने की इस प्रक्रिया को डिसिंचांटमेंट (Disenchantment) कहते हैं."[4] परिणामस्वरुप वैचारिक रूप से मानव और मानव के कारण प्रकृति प्रदूषित होती गई है. यहाँ भी वेद हमें प्रकृति की शांति का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं कि,

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥[5]

यजुर्वेद के इस शांति पाठ मंत्र में यह कामना की गयी है कि वायु में शांति हो, अंतरिक्ष में शांति हो, पृथ्वी पर शांति हों, जल में शांति हो, औषधि में शांति हो, वनस्पतियों में शांति हो, विश्व में शांति हो, सभी देवतागणों में शांति हो, ब्रह्म में शांति हो, सब में शांति हो, चारों और शांति हो, हे परमपिता परमेश्वर शांति हो, शांति हो, शांति हो।

साहित्य कभी भी समाज पर सीधा असर नहीं दिखाता है. वह पाठक अथवा श्रोता के मन-मस्तिष्क में गहरे पैठकर मानव के मलिन मन का परिष्कार करता है. संपूर्ण मानवीय सृष्टि के संचालन में मनुष्य तथा उसकी चेतना ही कार्य करती है. पर यह अस्वाभाविक नहीं कि भौतिक सत्ता का असर भी उसकी चेतना पर पड़े. भौतिकता के प्रभाव में कभी यह चेतना सुसंस्कृत तो कभी दूषित भी हो जाती है. ऐसे में कविता और अन्य साहित्य चेतन और अवचेतन के परिष्करण में सहायक होता है. 'कविता क्या है' निबंध में 'आचार्य शुक्ल' लिखते हैं कि, "कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है. जहां जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता. वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है. उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है. इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है."[6] शुक्ल जी ने यहां जिन अनुभूतियों के संचार की बात की है दरअसल वे अनुभूतियां हमारे चेतन मन से होते हुए अवचेतन मन की ओर प्रवाहित होती हैं. मानसशास्त्र की मान्यता है कि हमारे प्रत्यक्ष कार्यकलाप भी इस अवचेतन मन से बहुत हद तक प्रभावित होते हैं. इस तरह कला एवं साहित्य द्वारा प्राप्त अनुभूतियां अवचेतन मन के सहारे मनुष्य का मार्गदर्शन करती हैं. डॉ० के. वनजा इस संबंध में लिखती हैं, "चेतन के समान अचेतन भी मनुष्य की जिंदगी की गतिविगति को नियंत्रित करता है. दर्शनों एवं आशयों के समान या उससे ज़्यादा सहज वासनाएँ एवं आदिरूप मनुष्य के मन में असर डालते हैं. कला मनुष्य के अचेतन पर प्रभाव डालती है. यह अचेतन चेतन को प्रज्वलित करता है."[7] इसलिए वेदों में ऋचाओं के माध्यम से यह बतलाया गया है कि मनुष्य सहित प्रत्येक जाति की निर्मित मूलरूप से पंचतत्त्वों से ही हुई है। इसलिए स्वयं को निर्दोष रखने के लिए भी हम उन्हीं पंचमहाभूतों से प्रार्थना करते हैं कि,

त्रायन्तामिमम देवस्त्रायन्तां मरुतां गणाः ।
त्रायन्तां विश्वाभूतानि यथायमरपा असत ।।[8]

अर्थात, इन्द्रियाँ इस जीव की रक्षा करें और वायु श्वास-प्रश्वास के प्रवाह की रक्षा करें जिसमें यह प्राणी दोषरहित हो जावें। इस तरह इन ऋचाओं के माध्यम से हमारे अवचेतन मन में वायु आदि तत्वों के प्रति श्रद्धा पैदा होती है और हम उसका (प्रकृति का) सम्मान करना सीखते हैं.

आधुनिक युग में वैदिक साहित्य की प्रासंगिकता:

बीसवीं सदी में बढ़ते वैज्ञानिक आविष्कारों, औद्योगीकरण और बढ़ते यातायात के साधनों के कारण अनेक प्रकार के प्रदूषण की समस्याएं बढ़ने लगीं. सदी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते इन समस्याओं ने विकराल रुप धारण कर लिया. मनुष्य इन समस्याओं पर सोचने के लिए विवश हो गया. घर-बाहर हर जगह प्रदूषण. बाजार के वैश्वीकरण के बाद तो प्रकृति पर ऐसा कहर टूटा जो अपूर्व था. वैश्वीकरण की प्रक्रिया को भी बहुत सोच समझकर आगे बढ़ाया गया था. नव उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद ने अपना प्रभाव ऐसी जगह डाला जहां से वे तीसरी दुनिया के देशों में 'नियमबद्ध' और 'अधिकारपूर्वक' शोषण कर सकें. अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्वबैंक से पहले से ही कर्जे में दबे देशों के ऊपर बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां उनका 'कल्याण' करने के बहाने तरह-तरह के नियम लगाकर उनके अंदर व्यवसाय करने घुस आयीं. रोहिणी अग्रवाल इस संदर्भ में ठीक ही लिखती हैं कि, "नवउदारवादी अर्थव्यवस्था और उपभोक्तावाद के गठबंधन ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अनायास ही यह अधिकार दे दिया है कि विकास के नाम पर मदद हेतु वे तीसरी दुनिया के तंबू में ऊँट की भाँति पाँव पसारें और फिर मूल निवासियों को ही वहाँ से खदेड़ दें. झारखंड, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा में खनन कंपनियों की लूट को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है. यह लूट प्राकृतिक संपदा के अंधाधुंध दोहन के साथ ही समाप्त नहीं होती, अपने साथ अनेक विकृतियाँ, अव्यवस्था और समस्याएँ भी लाती हैं."[9] हम पर्यावरण का जितना अधिक दोहन और शोषण कर सकने में सक्षम हो गए हैं उतना ही अपने को विकसित मानते जा रहे हैं. जबकि आज भी पूज्य मानकर उनकी सुरक्षा कर रहे कई आदिवासी समुदायों को हम असभ्य, पिछड़ा और अविकसित घोषित कर देते हैं. जबकि उचित यह होना चाहिए कि हम उनकी विशद ज्ञान परंपरा से कुछ सीखकर अपने ज्ञान में वृद्धि करें. अमानवीयता की हद इससे अधिक और क्या हो सकती है? अपने उपभोग और बेलगाम लालसा को सिधाने के लिए एक और हम धरती का कोना-कोना नष्ट किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर नकली पेड़-पौधे और जानवर को अपने पास रख कर हम अपने प्रकृतिप्रेमी होने का भी प्रमाण देते रहते हैं. संभवत: इन खतरों को भाँप कर वेदकारों ने आज से हज़ारों वर्षों पूर्व ही वायु, जल, अग्नि, वृक्ष, सूर्य आदि का महत्त्व प्रतिपादित किया था. जिस जल की अशांति से आज हम जूझ रहे हैं जल की शांति की कामना करते हुए अथर्ववेदकार कहते हैं,

शं ते आपो हैमवती शमु ते संतूत्सया: ।
शं ते सनिष्यदा आप: शयु ते सन्तु वर्ष्या: ।।[10]

अर्थात हे मनुष्य! तेरे लिए हिम वाले पहाड़ों से उत्पन्न जल शांतिदायक होवें. तेरे लिए शीघ्र बहने वाले जल शांतिदायक होवें. तेरे लिए वर्षा से उत्पन्न जल शांतिदायक होवें. आज अम्ल वर्षा से जूझ रहे मानव समाज को इन पंक्तियों का महत्त्व समझाने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।
इस प्रकार वेदों का अनुसरण कर हम न केवल स्वयं सुखी रह सकते हैं अपितु सम्पूर्ण पृथ्वी और चराचर के अस्तित्त्व को भी विद्यमान रख सकते हैं. हमें अपने दैनंदिन जीवन को सुखी, समरस बनाने के लिए वेदों की ओर अनिवार्य रूप से उन्मुख होना होगा.

संदर्भ सूची

1. अथर्ववेद १२.१ .११
2. यजुर्वेद ९. ३
3. वृहदारण्यकोपनिषद्, अध्याय 2, 5. १
4. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० 11
5. यजुर्वेद
6. चिंतामणि-1, रामचन्द्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2007, पृ० 107
7. साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन, के. वनजा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ० 11
8. ऋग्वेद १०.१३७.५
9. प्रतिमान, समकालीन हिंदी उपन्यास और पारिस्थितिकीय संकट, रोहिणी अग्रवाल, वाणी प्रकाशन, जन-जून 2013, पृ० 205
10. अथर्ववेद १९.२.१